प्रेमचंद जन्मतिथि (31-7-1880) निमित्त

प्रेमचंद : पुनर्मूल्यांकन की दिशाएँ एवं चर्चाएँ

डॉ. रवींद्रनाथ मिश्र

आज भी हमारे समाज में दहेज एवं अन्य कारणों से नारी उत्पीडन, दलितों पर अत्याचार, भूख और कर्ज न चुका पाने के कारण आत्महत्याएँ, दंगे,-जातिवाद, प्रांतवाद, भाषावाद, आतंकवाद, ईमानदार इंजीनियरों, शासकीय अधिकारियों एवं कर्मचारियों की हत्याएँ, सामंतवादी प्रवृत्ति के नेताओं, सरकारी अधिकारियों और कर्मचारियों द्वारा जनता का शोषण एवं करोड़ों रुपयों का घोटाला, स्त्री-पुरुष संबंधों में पड़ती दरारें, तलाक और आत्महत्याएँ, मिल मालिकों, शिक्षा संस्थाओं द्वारा क्रमशः मजदूरों, विद्यार्थियों और अध्यापकों का शोषण, आदि जैसी घटनाएँ आए दिन पढ़ने और सुनने को मिलती रहती हैं । इन सब घटनाओं से लगता है कि सदी बीत जाने पर भी हमारी सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था में कोई खास फर्क नहीं आया है ।

अब जुम्मन शेख और अलगू चौधरी की मित्रता, बंशीधर की ईमानदारी, होरी और धनिया का पति-पत्नी का रिश्ता, गोबर का झुनिया के प्रति आत्मसमर्पण का भाव, सूरदास जैसा देश-प्रेमी, हामिद जैसा बेटा, सुमन, जालपा, निर्मला आदि जैसी नारियाँ बहुत कम देखने और सुनने को मिलती हैं । दरअसल 21वीं सदी के दहलीज पर खड़े होकर जब हम अतीत की ओर झाँकते हैं तो प्रेमचंद के गाँव और आज के गाँव में भी काफी अंतर आ चुका है । उस समय जहाँ प्रेमचंद के सामने एक ओर साम्राज्यवादी अंग्रेजों का शिकंजा एवं सामंतवादी और महाजनी शोषण की समस्या थी आज वहाँ बहुराष्ट्रीय कंपनियों का मायाजाल और राजनेताओं एवं शासकीय अधिकारियों और कर्मचारियों की शोषण नीति विद्यमान है ।

प्रेमचंद ने एक ही मोर्चे से आजादी के आंदोलन और समाज सुधार की लड़ाई लड़ी । उन्होंने जहाँ स्वतंत्रता आंदोलन के लिए सूरदास को गांधी के प्रतिनिधि के रूप में खड़ा किया वहीं पर जोखू, हल्कू, दुःखी, शंकर, घीसू, माधव आदि शोषित पात्रों द्वारा त्रासद निस्सहायता और शोषकों की अमानुषिकता को व्यक्त किया । वस्तुतः प्रेमचंद ने भी कबीर की भांति समाज की आखिन देखी को तुलसी की भांति सरस ढंग से व्यापक फलक पर चित्रित किया । इनके लेखकीय व्यक्तित्व और निजी व्यक्तित्व को हम एक-दूसरे से अलग कर नहीं देख सकते । प्रेमचंद ने उस समय जिन मुद्दों को उठाया था और जिनको लेकर उन्होंने साहित्य-रचना की थी, वे आज भी उसी रूप में थोड़े-बहुत बदलाव के साथ विद्यमान हैं । उनकी संतुलित वस्तुनिष्ठ दृष्टि आज भी हमें सोचने पर बाध्य करती है । सूचना तकनीक और मीड़िया के कारण नए-नए आयाम विकसित हो रहे हैं ; फलतः दुनिया मुठ्ठी में आ गई है । बाजारवाद के कारण मूल्यों की अस्मिता गायब हो रही है । आतंकवाद के अंतरराष्ट्रीय स्वरूप एवं अन्य सामाजिक कारणों से व्यक्ति एवं समाज की सोच में भी फर्क आया है। इन सब बदलावों के बाद भी प्रेमचंद की

रचनाएँ आज भी उतनी ही लोकप्रिय हैं जितनी कि पहले थीं । इनकी ख्याति राष्ट्रीय स्तर पर ही नहीं अपितु विश्व स्तर पर बन चुकी है ।

प्रेमचंद की रचनाओं में एक गहराई एवं खुलापन पाया जाता है जोकि पाठक को गहरे स्तर तक प्रभावित करता है । जैसे कि 'रंगभूमि' में प्रेमचंद अंधे को सूरदास कहकर गौरवान्वित ही नहीं करते, वे इस शब्द में अपना अर्थ भी भरते हैं कि वह यद्यपि आँख से ही नहीं, जाति से भी लाचार है लेकिन उसकी दृढ इच्छा-शक्ति और कल्याण-भावना उसे कहीं से लाचार नहीं रहने देती । उनके लेखन में संकीर्ण भावनाओं के लिए स्थान नहीं है । उसमें गहरी इंसानी हमदर्दी, 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' का भाव, कबीर का सांच एवं आपबीती है । यही कारण है कि भारतीय भाषाओं के साहित्यकारों में भी प्रेमचंद लोकप्रियता के शिखर पर हैं । मैंने एक साक्षात्कार के दौरान गोवा के प्रसिद्ध कोंकणी साहित्यकार श्री पुंडलीक ना. नायक (संप्रति अध्यक्ष, कोंकणी अकादमी गोवा) से पूछा कि 'आप हिंदी के किस रचनाकार से अधिक प्रभावित हैं ?' उन्होंने तुरंत उत्तर दिया कि 'प्रेमचंद!' और आगे वे कहने लगे कि मैं इनके लेखन से बहुत प्रभावित हुआ और साथ ही ये मेरे कोंकणी कथा-लेखन के प्रेरणास्रोत रहे और आज़ भी हैं । मैंने वरिष्ठ कथाकार कमलेश्वर के संपादन में 'भारतीय शिखर कथा कोश' नामक पुस्तक में प्रसिद्ध कोंकणी कथाकारों की कहानियों का हिंदी रूपांतर पढ़ा जिनमें 'लूट का पैसा', 'जीत', 'तड़पन', 'अकेला', 'बूचड़ की एक रात', 'पाता वह जो न चाहे', 'प्रसाद का फूल', 'तीन तारीख', 'उत्कंठा', 'धधकती छाया', 'गलसरी', 'रुद्र' एवं अन्य 'महाबली', 'बर्सल', 'सांपळा' आदि कहानियों में गोवा की हिंदू-क्रिश्चियन संस्कृति के अतिरिक्त पाखंड, आडंबर, ढोंग, अंधविश्वास, धार्मिक प्रपंच, सामंती उत्पीडन, शोषण, लोक मान्यताओं आदि का वही रूप झलकता है जोकि प्रेमचंद के साहित्य में मौजूद है ।

आजादी के लगभग साठ साल हो चुके हैं फिर भी हमारा समाज अंधविश्वास की जड़ताओं, परंपराओं एवं असमानताओं से मुक्त नहीं हुआ है। मध्यवर्गीय स्वार्थ प्रेरित सोच के कारण आज भी अनेक विसंगतियाँ विद्यमान हैं । प्रेमचंद ने अपने एक लेख में सन 1921 में ''स्वराज की पोषक और विरोधी व्यवस्थाओं'' के बारे में लिखा था (असहयोग आंदोलन और गांधीजी के प्रभाव में) कि ''शिक्षित समुदाय सदैव शासन का आश्रित रहता है । उसी के हाथों शासन के कार्य का संपादन होता है । अतएव उसका स्वार्थ इसी में है कि शासन सुदृढ रहे और वह स्वयं शासन के स्वेच्छाचार (दमन, निरंकुशता और अराजकता) में भाग लेता रहे ।'' भारत के स्वतंत्रथा-आंदोलन के दौरान इस वर्ग की उदासीनता से तो प्रेमचंद क्षुब्ध थे ही, साथ ही समाज में व्याप्त अंधविश्वास, प्रपंच, सामंती शोषण, वर्ग और वर्ण भेद के बीभत्स और कुत्सित रूप के प्रति भी इस वर्ग की उदासीनता एवं तटस्थता से भी नाखुश थे । दरअसल मध्यवर्ग की उक्त उदासीनता आज भी उसी रूप में बरकरार है । समकालीन कविता के सशक्त हस्ताक्षर धूमिल ने अपनी लंबी कविता 'पटकथा' में लिखा हैं -

मैंने हरेक को आवाज़ दी है,
हरेक का दरवाजा खटखटाया है,
मगर बेकार....मैंने जिसकी पूंछ

उठायी है उसको मादा
पाया है ।
वे सब के सब तिजोरियों के
दुभाषिये हैं ।
वे वकील हैं । वैज्ञानिक हैं ।
अध्यापक हैं । नेता हैं । दार्शनिक
हैं । लेखक हैं । कवि हैं । कलाकार हैं।
यानी कि –
कानून की भाषा बोलता हुआ
अपराधियों का एक संयुक्त परिवार है ।[1]

प्रेमचंद की विशेषता यह थी कि वे अपने समय और समाज की नब्ज को कुशल चिकित्सक की भांति पहचानते थे और साथ ही तत्कालीन समय के प्रति उतने ही अधिक संवेदनशील थे जितनी कि आज की सूचना टेक्नांलाजी । उनके पात्र कपोल-कल्पित न होकर भारतीय माटी के जीवंत रूप हैं.जिनको कि प्रेमचंद ने गहरी संवेदना एवं मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रित किया । उन्होंने 1936 में रायसहब की बिगड़ती हुई स्थिति एवं खन्नासाहब के बढ़ते हुए प्रभाव को दिखाकर जमींदारी-प्रथा का अंत और पूंजीवादी व्यवस्था के शुरुआत की घोषणा कर दी थी । आज हम उसी पूंजी का तांडव देख रहे हैं । प्राचीन चतुष्ट्य पुरुषार्थ में अब केवल अर्थ और काम को महत्त्व दिया जा रहा है । प्रेमचंद के उपन्यासों में जगह-जगह बिखरे हुए सैकड़ों पात्र विविध परिस्थितियों के अंतर्गत संघर्ष करते हुए हारते और जीतते हुए दिखाई देंगे । लेकिन उनमें से होरी, सूरदास और निर्मला हारकर भी जीतते हैं । नरेंद्र कोहली ने लिखा है कि ''प्रेमचंद के पात्र-होरी, सूरदास तथा निर्मला वे ऋषि हैं जिन्हें राक्षस खा गए हैं और जिनकी हड्डियों को देखकर प्रत्येक पाठक के मन में राम पृथ्वी को निशाचर-विहीन करने का प्रण करता है ।''[2] आज भी ईमानदार, कर्मठ, कर्तव्यपरायण इंसान आए दिन राक्षसों के हाथों मारे जा रहे हैं और भ्रष्ट आचरण वाले धनपशु और बाहुबली स्वच्छंद होकर घूम रहे हैं । निराला के शब्दों में कहें तो ''अन्याय जिधर, है उधर शक्ति।'' की स्थिति आज बनी हुई है ।

आज संयुक्तपरिवार की संकल्पना समाप्त हो गई है । सारे संबंध स्वार्थों पर केंद्रित हो गए हैं। पारिवारिक मर्यादाओं एवं आपसी भाई-चारे की भावना समाप्त हो गई है । दांपत्य जीवन के बीच मधुर संबंध गायब हो गया है । एक तरफ गोदान की धनिया तो होरी की महारानी है, तो दूसरी तरफ झुनिया अपने प्रेम के समर्पण को इन शब्दों में व्यक्त करती है – ''मैं तो जिसकी हो जाऊँगी, उसकी जनम भर के लिए हो जाऊँगी, सुख में, दुःख में, संपत में, बिपत में उसके साथ रहूँगी । हरजाई नहीं हूँ कि सबसे हँसती-बोलती फिरूँ । न रुपये की भूखी हूँ, न गहने-कपड़े की । बस भले आदमी का संग चाहती हूँ, जो मुझे अपना समझे और जिसे मैं भी अपना समझूँ ।''[3] मुझे नहीं लगता कि इस प्रकार का समर्पण भाव आज की आधुनिक नारी में है । होरी के घर गाय आई। उसका दिल भीतर ही भीतर तड़प उठता है कि कैसे वह अपने भाइयों को गाय दिखाए ? क्योंकि उसे धनिया का डर सता रहा है । उसने देखा कि धनिया बाजार से मिट्टी का तेल लाने जा रही है। होरी ने धीरे से रूपा को बुलाकर प्यार से गोद में बैठाया और कहने लगा – ''जरा जाकर देख, हीरा काका आ गए हैं कि नहीं । सोभा काका को भी

देखती आना । कहना, दादा ने तुम्हें बुलाया है। न आए, हाथ पकड़कर खींच लाना ।''[4] आज जब हम इस प्रकार के आत्मीयभाव को याद करते हैं तो हमें प्रेमचंद बरबस याद आते हैं क्योंकि अब इस प्रकार के रिश्तों की मिठास गायब हो गई है ।

प्रेमचंद युगीन प्रभावों के तहत आदर्शवादी, नैतिकतावादी और मानवतावादी हो गए हैं । प्रेमचंद की सामाजिक प्रतिबद्धता नागार्जुन की इन पंक्तियों से मेल खाती है –

''प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ, प्रतिबद्ध हूँ –
बहुजन समाज की अनुपल प्रगति के निमित्त–
संकुचित 'स्व' की आपाधापी के निषेधार्थ....
अविवेकी भीड़ की 'भेड़िया–धसान' के खिलाफ ....
अंध–बधिर 'व्यक्तियों' को सही राह बतलाने के लिए....
अपने आप को भी 'व्यामोह' से बारंबार उबारने की खतिर....
प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ, शतधा प्रतिबद्ध हूँ ।''[5]

प्रेमचंद पहले अपनी 'पंच परमेश्वर', 'नमक का दरोगा', 'परीक्षा' आदि कहानियों में जिन आदर्शों और मानवीय मूल्यों की स्थापना करते हुए तमाम सामाजिक सुधारों की बात करते हैं वे बाद की 'ठाकुर का कुआँ', 'सद्गति', 'पूस की रात', 'कफन' आदि कहानियों और 'गोदान' जैसे उपन्यास में बिखर कर टूट जाते हैं । उनके पहले के पंच परमेश्वर ब्राह्मण, शासक, अफसर, पुलिस आदि बाद में क्रमशः ग़रीबों का खून चूसने वाले राक्षस, पाखंडी, स्वार्थी, भ्रष्टाचारी बन जाते हैं । वर्तमान में इस प्रकार की कुप्रवृत्तियों का इजाफा काफी मात्रा में हुआ है । ऐसे लोगों के कारण अन्य संस्थाओं की भांति आज समाज की पवित्र शिक्षा–संस्थाएँ भी दूषित हो रही हैं । अभी हाल ही में पश्चिमी उत्तर–प्रदेश में पंचों के द्वारा सुनाए जाने वाले फैसलों को सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं । भ्रष्टाचार को तो लगता है कि जैसे सामाजिक मान्यता मिल गई है और यह अधिकांश लोगों के रक्त में समा गया है । भीष्म साहनी का मानना है कि– ''जिस आदर्शोन्मुख यथार्थ की चर्चा प्रेमचंद ने की थी, और जो संज्ञा उनके अपने साहित्य पर सटीक बैठती है, उसके एक छोर पर समाज का कटु यथार्थ था, उसकी विसंगतियाँ थीं ; दूसरे छोर पर मानव–कल्याण की भावना से ओत–प्रोत वे महान आदर्श थे जिनकी ओर वे यथार्थ को ले जाना चाहते थे ।''[6]

हिंदी साहित्य में जहाँ प्रेमचंद के प्रशंसकों ने उन्हें उपन्यास सम्राट घोषित करते हुए 'न भूतो न भविष्यति' की बात कही, वहीं पर आचार्य नंददुलारे वाजपेयी और मशहूर उपन्यासकार इलाचंद्र जोशी ने क्रमशः यह कहकर उनको खारिज कर दिया कि ''मूल तत्व यह है कि प्रेमचंद का कोई स्वतंत्र स्वानुभूति दर्शन नहीं है । केवल समसामयिकता क आदर्श है ।''[7] ''प्रेमचंद एक निहायत पिछड़े, बासी और पुराने (आर्केइक) किस्म के कथाकार हैं। कहानी उनसे सौ साल आगे आ गई है ।''[8] जहाँ उक्त साहित्यकारों ने प्रेमचंद के साहित्य को हल्के किस्म का माना है वहीं पर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने वर्तमान के प्रति प्रेमचंद की निष्ठा का अभिनंदन बड़े उदार मन से किया है – ''प्रेमचंद हिंदी कथा–साहित्य की प्रौढ़ता के सबूत हैं । उन्होंने अपनी आँखों से समाज को देखा। वे इस नतीजे पर पहुँचे थे कि

बंधन भीतर का है, बाहर का नहीं । भीतरी बंधन दो प्रकार के हैं- भूतकाल की संचित स्मृतियों का जाल और भविष्य की चिंता से बचने के लिए संगृहीत जड़ संभार । एक का नाम है संस्कृति, दूसरे का संपत्ति। एक का रथ वाहक धर्म है, दूसरे का राजनीति है । अपने एक मौजी पात्र (प्रोफेसर मेहता) के मुँह से 'गोदान' में कहलवाया है मैं भूत की चिंता नहीं करता। भविष्य की परवाह नहीं करता । भविष्य की चिंता हमें कायर बना देती है, भूत का भार हमारी कमर तोड़ देता है । हममें जीवन की शक्ति इतनी कम है कि भूत और भविष्य में फैला देने से वह और भी क्षीण हो जाती है ।''[१]

आज नारी और दलित-विमर्श की चर्चा प्रेमचंद के साहित्य के बगैर नहीं हो सकती । इनके कथा-साहित्य में बिखरे हुए सैकड़ों पात्र विभिन्न दृष्टियों से संपूर्ण मानव जीवन की गाथा को व्यक्त करते हैं । पूर्वी उत्तर-प्रदेश के गाँवों की जीवन-शैली एवं रोज-मर्रा के कार्य-व्यापर की जांच-पड़ताल करनी हो तो प्रेमचंद के साहित्य से गुजरना होगा जहाँ आपको जीवन के विविध रंग दिखाई देंगे।

राल्फ फाक्स ने उपन्यास के विषय में लिखा है कि ''वह मानव जीवन का गद्य है, ऐसी पहली कला है जो संपूर्ण मानव को लेकर उसे अभिव्यक्ति प्रदान करने की चेष्टा करती है ।'' प्रेमचंद का कथा-साहित्य उक्त कथन की पुष्टि अपनी समग्रता में करता है । इनकी साहित्य-सर्जना का दृष्टिकोण विशुद्ध मानवीय था । वैसे तो इनको कई वादों के दायरे में घेरा गया लेकिन इनकी गहरी मानवीय-संवेदना के सामने सारे वाद व्यर्थ दिखाई देते हैं। प्रेमचंद ने जो कुछ लिखा वह अंदर की मैल निकलकर लिखा । उनके हृदय में दलितों और शोषितों के प्रति सच्ची करुणा थी । उनमें दिखावटीपन नहीं था । प्रेमचंद की संघर्षशीलता और मानवीयता की प्रासंगिकता सदियों तक बनी रहेगी ।

प्रेमचंद ने अपनी अनुभूति को नए साहित्यिक मानदंडों पर कस कर वाणी दी । वे अच्छी तरह जानते थे कि पूर्वदृष्टि या पूर्व-कसौटी पर नए जीवन और नवीन मान्यताओं को नहीं परखा जा सकता । उनका कहना था कि हमें साहित्य के सौंदर्य की कसौटी बदलनी होगी । प्रेमचंद ने कथा साहित्य को एक नई उर्वर ज़मीन दी जिस पर कि आज कथा साहित्य की फसल लहरा रही है । उन्होंने भाषा संबंधी सांप्रदायिकता की दीवार को तोड़ते हुए उर्दू-हिंदी दोनों में लिखा । कबीर की भांति ये दोनों संप्रदायों के प्रिय रचनाकार थे । जीवन की सच्चाई को हिंदुस्तानी एवं किस्सागोई शैली में व्यक्त कर ये हिंदी भाषा के ही नहीं अपितु समस्त भारतीय भाषाओं के रचनाकार बन गए । वे अधिक पठनीय हैं, अधिक रोचक हैं, अधिक प्रेरक हैं । प्रेमचंद की पठनीयता, रोचकता और प्रेरणादायकता का कारण उनकी स्वभावगत सरलता और सहजता है। वर्तमान अहंग्रस्त रचनाकारों को इनसे सीख लेनी चाहिए ।

प्रेमचंद ने अपनी भाषा को अलंकारों, प्रतीकों, बिंबों और लोककहावतों से सजाया । तुलसी की भांति प्रेमचंद ने विचार एवं भाषा का प्रयोग समाज के सामान्य एवं विशिष्ट दोनों वर्गों के लिए किया। लोकजीवन में घुले-मिले शब्दों के प्रयोग से उनकी भाषा की ताजगी बनी हुई है । इनके द्वारा प्रयुक्त शब्द अपनी अलग-अलग अर्थछवियाँ रखते हैं, जोकि पात्रों की पूरी संवेदना को व्यक्त कर देते हैं।

प्रेमचंद के साहित्य के पुनर्मूल्यांकन की अनेक दिशाएँ हैं जोकि सीधे हमारी जिंदगी से जुड़ी हुई हैं। उन पर आज ही नहीं अपितु भविष्य में भी चर्चाएँ आयोजित होती रहेंगी क्योंकि उनका संबंध मानव जीवन से है । प्रेमचंद ने कथा-साहित्य को काल्पनिक दुनिया से निकालकर यथार्थ जीवन से जोड़ा । उन्होंने साहित्य को, स्वाधीनता के भाव, सौंदर्य के सार और जीवन की सच्चाइयों से जोड़ते हुए संघर्षमय और गतिशील बनाया । कालांतर में उस साहित्य से भिनसारे की एक नई किरण फूटी और हम सब उसी के आलोक में कई वर्षों उनके साहित्य का मंथन कर रहे हैं ।

संदर्भ सूची :

1. संसद से सड़क तक – धूमिल
2. प्रेमचंद –नरेंद्र कोहली
3. गोदान –प्रेमचंद
4. नागार्जुन–प्रतिनिधि कविताएँ – सं.नामवर सिंह
5. प्रेमचंद–प्रतिनिधि कहानियाँ – सं.भीष्मसाहनी
6. हिंदी साहित्य की भूमिका – हजारी प्रसाद द्विवेदी
7. हंस–जुलाई 05 – सं. राजेंद्र यादव
8. प्रेमचंद–कथासाहित्य : समीक्षा और मूल्यांकन – धर्मध्वज त्रिपाठी
9. हिंदी साहित्य : बीसवीं शताब्दी – नंददुलारे वाजपेयी

हिंदी विभाग, गोवा विश्वविद्यालय, गोवा-403206

हाइकु

राजेंद्र परदेसी

(1)
प्रकृति रूठी
संतुलन बिगड़ा
कठिन जीना

(2)
वृक्षों के संग
मानवीयता रिश्ता
हम सबका

(3)
पाती पढ़ते
पाखी बनके मन
उड़ना चाहें

(4)
खेत कुंआरे
खुले गगन पर
भटकी आश

(5)
गीत पखेरू
शब्दों के पर बने
उरते फिरे

(6)
दारुण व्यथा
भटकती आज भी
बेबस सीता

(7)
कोई लाचारी
आस्तीन में सांप
पाले रहती

(8)
नव सृजन
आकर्षक जीवन
सुख का स्रोत

(9)
अकेला पन
मखमल बिछौना
नींद न आए

(10)
भीख मांगती
भटके महतारी
व्यर्थ शान

(11)
अपनी आत्मा
नींद में सुलाकर
पत्थर पूजे

(12)
ढूँढ़ती आँखें
पैबंद जिंदगी का
किसके पास

(13)
मन की बात
चेहरे पर आती
सब बताती

(14)
लक्ष्य अज्ञात
मंजिल की तलाश
मृग तृष्णा-सी

(15)
भोर किरन
छाजन पर आया
काग न बोला

(16)
राहें अनेक
सलाहकार सभी
साथी न कोई

भारतीय पब्लिक अकादमी
चांदन रोड, फरीदी नगर
लखनऊ-226015